16. स्वास्थ्य कला

यह उक्ति प्रसिद्ध है कि 'यदि मनुष्य का स्वास्थ्य गया तो मानिये कि उसका कुछ महत्त्वपूर्ण नुकसान हुआ।' स्वास्थ्य के बिना मनुष्य की शारीरिक कार्य-क्षमता में अन्तर आता है। शारीरिक कमज़ोरी से मनुष्य कई अच्छे काम करना चाहते हुए भी नहीं कर पाता। और तो क्या, मनुष्य की साधना में भी अस्वस्थता कुछ न कुछ बाधा उपस्थित करती है और उसका ध्यान महत्वपूर्ण आध्यात्मिक सेवाओं की ओर ले जाने तथा लगाने की बजाय शरीर की ओर खिंचवाती है। अतः स्वास्थ्य एक अनमोल निधि है।

परन्तु दवाइयों के आधार पर शरीर को चलाते रहना स्वास्थ्य नहीं है। वास्तविक स्वास्थ्य वो है कि स्वाभाविक एवं प्राकृतिक रीति से, निर्विघ्न रूप से स्वचलित हो। उसके लिए जीवन में कई प्रकार की धारणाओं की आवश्यकता है। यद्यपि पिछले अनेक जन्मों के कर्मों के हिसाब-किताब के चुक्ता होने के लिए भी अस्वस्थता मनुष्य को आ घेरती है तो भी जीवन में कुछेक महत्त्वपूर्ण नियमों के पालन से भी काफ़ी हद तक स्वास्थ्य बना रह सकता है। आज यह माना जा रहा है कि मनुष्य को कई रोग उसके वंश के पूर्वजों से मिलते हैं और इसलिए उनका मुख्य कारण आनुवंशिक होता है और कुछेक रोग दुर्घटना से, प्राकृतिक प्रकोपों से, पर्यावरण प्रदूषण से और अनायास ही खाने-पीने की चीज़ों में मिलावट से उसको आ पकड़ते हैं। निःसन्देह कर्मों के सूक्ष्म प्रभाव के रूप में ये सब कारण तो होते हैं परन्तु जहाँ तक मनुष्य के स्वास्थ्य की स्वयं उस द्वारा देखभाल करते रहने की बात है, वहाँ यह भी सत्य है कि **जीवन के कई ऐसे विधि-विधान हैं जिनको पालन करने से मनुष्य को अपना स्वास्थ्य बनाये रखने की सुविधा होती है। उन नियमों तथा विधि-विधानों का पालन करना भी स्वयं में एक बहुत बड़ी कला है जिसे हम यहाँ 'स्वास्थ्य कला' कह रहे हैं।**

उदाहरण के तौर पर सदा ख़ुशी में रहना स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक है। कहा गया है कि ख़ुशी जैसी ख़ुराक नहीं। चिन्ता को चिता के समान माना गया है। भय भी मनुष्य को मृत्यु की ओर ले जाने वाला विकार है जो उसके हृदय, मस्तिष्क और सारे स्नायुमंडल को झकझोर देता है। चिन्ता और भय से भोजन भी शरीर में विकृत रूप ले लेता है और विषाक्त हो कर शरीर को रुग्ण अवस्था में ले जाता है। इसके विपरीत कोई मनुष्य

दिनोंदिन हृष्टपुष्ट होता जाता है, मानो कि वो कोई पुष्टिवर्धक पदार्थ (Tonics) खाता हो। कहा गया है कि यदि मनुष्य के भोजन में सब विटामिन हों परन्तु यदि ख़ुशी रूपी विटामिन न हो तो शरीर के विकास तथा स्वास्थ्य में कमी आती है। परन्तु मनुष्य सदा ख़ुश तब रह सकता है जब वो (i) ईश्वर में निश्चय-बुद्धि होता है, (ii) भावी में विश्वास रखता है, (iii) कर्मों की गति को समझता है, (iv) इन सब बातों को जानकर अपनी ओर से पुरुषार्थ करता है और फिर (v) परिणाम के बारे में व्यथित नहीं होता। ये सब तो ऐसे ज्ञानी और योगी ही के लक्षण हैं जो पुरुषार्थ में पूरे रूप से तत्पर रहता है और कर्मफल की चिन्ता छोड़ देता है।

जो व्यक्ति सात्विक भोजन करता है उसका स्वास्थ्य भी स्वाभाविक रूप से ठीक बना रहता है। सात्विक भोजन से अभिप्राय यह है कि (i) उसमें मांस-मदिरा, प्याज, लहसुन, तम्बाकू, उत्तेजक पदार्थ, अनेक प्रकार के तेज़ मिर्च-मसाले इत्यादि नहीं होते, (ii) जो बासी, बिगड़े हुए स्वाद वाला, चिरकाल से रखा हुआ, (iii) भारी, (iv) देर से हज़म होने वाला इत्यादि दोषों से रहित होता है। इस पर भी विशेष बात यह है कि जिस भोजन को बनाने वाला व्यक्ति पवित्रता का पालन करता हो और भोजन बनाते समय योगयुक्त हो, वही भोजन सात्विक है। इतना ही नहीं, बल्कि भोजन को सात्विक कोटि वाला बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि (v) खाने वाला व्यक्ति भी खाते समय योगयुक्त होकर सेवन करे। जो व्यक्ति योगयुक्त होकर भोजन करता है वो (vi) स्वाद के वशीभूत होकर पदार्थ को ज़रूरत से ज़्यादा मात्रा में नहीं लेता। (vii) जो पदार्थ उसके शरीर के अनुकूल न हो, उसे भी वो नहीं लेता और भोजन को एक प्रकार से (viii) प्रसाद मानकर (ix) मन की मुदित एवं निश्चिन्त अवस्था में उसे स्वास्थ्यप्रद मान कर स्वीकार करता है। ऐसे भोजन से मनुष्य के मन में हर्ष उत्पन्न होता है, उसे शरीर में हल्कापन महसूस होता है और वो आलस्य के अधीन नहीं होता।

जिस व्यक्ति को सकारात्मक विचार (Positive thinking) करने का अभ्यास है, उसके शरीर में भी स्फूर्ति, लचक और हल्कापन होता है।

(i) निराशा-भरे विचारों वाला व्यक्ति, (ii) दूसरों के जीवन में त्रुटियाँ देखने वाला अथवा छिद्रान्वेषी व्यक्ति, (iii) हरेक चीज़ में कमी-कमज़ोरी देखकर अपने भाग्य को कोसते रहने वाला व्यक्ति, (iv) दूसरों के प्रति कटु दृष्टि रखने वाला व्यक्ति और (v) सदा रुष्ट एवं असन्तुष्ट रहने वाला व्यक्ति अपने ही स्वास्थ्य को स्वयं बिगाड़ता है। वो स्वास्थ्य रूपी चन्दन के पेड़ों को स्वयं ही जलाकर, उनका कोयला बना देता है। वह नकारात्मक विचार रूपी कांटे अपने तन-मन में लगाकर स्वयं ही दुःखी होता है और इस विधि अपने स्वास्थ्य को गँवा बैठता है। परन्तु सकारात्मक चिन्तन में वो प्रवृत्त हो सकता है जिसकी ये स्थिर मान्यता हो कि (i) मेरा कल्याण होने वाला है, (ii) मेरा हाथ प्रभु के हाथ में है; इसलिए कोई मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता है, (iii) मैं स्वयं ही अभी अपूर्ण हूँ, इसलिए दूसरे की अपूर्णता देखना गोया स्वयं को धूल-धूसरित करना है और (iv) कि जो होगा सो देखा जायेगा, मेरा कर्त्तव्य तो अच्छा करना है और (v) कि दूसरों की कमियों-कमज़ोरियों को न देखकर मुझे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना है। इसलिए यह मानना होगा कि **ईश्वरीय ज्ञान की ठीक प्रकार की धारणा से ही मनुष्य में सकारात्मक विचार करने की कला आती है और सकारात्मक विचारों से सहज रीति स्वास्थ्य बनाये रखने की कला आती है।**

जो व्यक्ति प्रायः जल्दी उठकर शौच कार्य से निवृत्त हो जाते हैं और स्नान-ध्यान का अभ्यास करते हैं, उनका भी तन और मन दोनों स्वस्थ रहते हैं। स्वस्थ तन और मन वाला व्यक्ति स्वस्थ तो होता ही है क्योंकि जहाँ स्वच्छता, पवित्रता, शुचिता और निर्मलता है वहाँ निश्चित रूप से स्वास्थ्य बनाये रखने में सफलता होती ही है। मल और विक्षेप भी स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाले होते हैं और जो व्यक्ति इन से मुक्त है वो स्वाभाविक तौर पर स्वस्थ होता ही है।

फिर ब्रह्मचर्य तो स्वास्थ्य का स्रोत ही है। (क) उससे अदम्य उत्साह होता है, (ख) शरीर में शक्ति का संचय भी होता है और (ग) वृद्धि भी होती है, (घ) मनुष्य का मनोबल बढ़ता है, (ङ) वो निर्भय बन जाता है और (च) स्वयं में स्वास्थ्य का एक झरना-सा महसूस करता है जो सतत् निरन्तर उसमें शक्ति का संचार करता रहता है। ब्रह्मचर्य व्रत का तो वही पूर्ण पालन कर सकता है (i) जो देह में अनासक्त हो, (ii) देह के आकर्षणों से मुक्त हो, (iii) देहाभिमान से ऊँचा उठ जाये और (iv) आत्म-स्वरूप में स्थित होकर स्वयं को अमृतपुत्र मानता हुआ, (v) प्रतिदिन ज्ञानामृत का सेवन करते हुए जीवन जीये। ब्रह्मचर्य से मनुष्य के जीवन में, शरीर में रोग-नाशक क्षमता (immunity) बढ़ती है और इसलिए वो रोगों के आक्रमण से बचा रहता है।

जिसे औरों की दुआयें मिलती हों, उसे भी स्वास्थ्य बनाये रखने में सहयोग मिलता है। लोगों की दुआओं का अपना एक प्रभामंडल होता है। उस प्रभामंडल से घिरा हुआ व्यक्ति रोगों के आक्रमणों से दु:खी नहीं होता बल्कि यदि रोग हो भी जायें तो वो उन्हें सहज रीति से झेल लेता है। दुआयें तो उसको ही मिलती हैं जो लोगों का भला करता है, उनके भले की बात सोचता है और भलाई करने में रात-दिन लगा रहता है। वो उनके मन को इतना जीत लेता है कि वे अपने अन्तर्मन से सूक्ष्म सहायता करते हैं और रोग-शमन शक्ति में अपनी शक्ति भी प्रदान करते हैं।

जितना कोई अधिक योग में रहता है उतना वो रोग से बचकर रहता है। स्वरूप में स्थित होना ही योग है और स्व में स्थित होने को ही 'स्वास्थ्य' कहा गया है। इसलिए स्व में स्थिति से स्वास्थ्य का लाभ होना स्वाभाविक है। योग से मनुष्य में कर्म की कुशलता आती है क्योंकि उसका शरीर स्वस्थ बना रहता है। योग के फलस्वरूप मनुष्य को 21 जन्मों तक 'कंचन-सम काया' प्राप्त होती है जिससे वो कमज़ोरी और बीमारी से ऊपर उठा रहता है।

जो व्यक्ति ईश्वरीय सेवा में लगा रहता है, उसे ईश्वरीय सहायता मिलती रहती है। उस सहायता से उसका स्वास्थ्य बने रहने की संभावना होती है। सेवा वाले व्यक्ति का शरीर अपने लिए न होकर, जनहित के लिए होता है और जनहित का कार्य करने वाले व्यक्ति को प्रभु अपना प्यार देते हैं और जिसे प्रभु का प्यार मिले, उस प्यार में स्वास्थ्य या रोग को झेलने की शक्ति समायी रहती है।

इस प्रकार ईश्वरीय ज्ञान, योग तथा सेवा इत्यादि से ही मनुष्य में स्वास्थ्य कला आती है। यहाँ तक कि उसके अपने शुभ संकल्प दूसरों के लिए भी स्वास्थ्यप्रद होते हैं।

अभी हमने जिन 16 कलाओं का उल्लेख किया है, वे कलायें प्रजापिता ब्रह्मा बाबा के जीवन में विशेष रूप से देखी जाती हैं। उनमें इन 16 कलाओं का विकास होते-होते वे स्वयं 'सोलह कला सम्पूर्ण' बन गये।

***